

# गैर-जिम्मेदाराना फैसले और शिक्षा का पेंडुलम

रोहित धनकर

राजस्थान के शिक्षा मंत्री ने हाल ही में तीसरी, पांचवीं और आठवीं में बोर्ड की परीक्षाएं लागू करने का एलान किया है। नए मुकाम पर पहुंच चुके शैक्षिक विमर्श के लिहाज से इस निर्णय को किस तरह समझा जाए? यह लेख इस विसंगतिपूर्ण निर्णय के कारणों को परंपरावादी शैक्षिक चिन्तन और ढांचे में प्रगतिशील विचारों को ठूसने के परिणाम के तौर पर देखता है।

**रा**जस्थान के शिक्षा मंत्री ने हाल ही में कहा है कि “आठवीं कक्षा तक बच्चों को फेल नहीं करने का फैसला उचित नहीं है। बच्चों का सही शैक्षणिक विकास हो सके, इसलिए कक्षा 8 तक तीन स्तर पर बोर्ड परीक्षा लागू की जाएगी।” (दैनिक भास्कर, 8 नवम्बर 2014) शिक्षा मंत्री ने आगे कहा है, “सरकार की योजना के तहत पहले स्तर पर कक्षा तीन में बोर्ड लागू होगा। यह स्कूल स्तर पर गठित होगा। दूसरे स्तर में कक्षा पांच की परीक्षा जिला स्तर पर गठित बोर्ड द्वारा ली जाएगी। तीनों कक्षाओं में बोर्ड आगामी सत्र से लागू होंगे।” आठवीं कक्षा में बोर्ड परीक्षा लागू करने का फैसला पहले ही किया जा चुका है।

राजस्थान में पांचवीं और आठवीं के बोर्ड पहले भी लागू रह चुके हैं। इन बोर्ड परीक्षाओं की ओर जिस तरह यह परीक्षा ली जाती थी उसकी समस्याओं के चलते तो आठवीं तक परीक्षा न करने का फैसला लिया गया था। अब परीक्षा न करने की समस्याएं देखकर उन्हें फिर से लागू करने का फैसला लिया जा रहा है। क्या इस बार ठीक से सोच लिया है या यह शिक्षा प्रणाली को एक पेंडुलम बनाने भर की कवायद है? जो इसे कभी इधर और कभी उधर ठेलने भर का खेल है? परीक्षा की पुरानी समस्याओं का सरकार ने क्या निराकरण सोचा है? उनकी शैक्षिक योजना क्या है? यदि इसे समझे बिना यह नया फैसला लागू हो रहा है तो यह एक नई नासमझी होगी और दो बार नासमझी का नाम समझदारी नहीं होता। सरकार के इस फैसले की विवेचना की जरूरत है। पर उससे पहले शिक्षा का अधिकार अधिनियम के कारण फैले भ्रम की विवेचना जरूरी है, नहीं तो समस्या ठीक से पकड़ में नहीं आएगी।

## लेखक परिचय

जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव।

आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलूर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (संक्षेप में “शिक्षा का अधिकार अधिनियम”) के बाद आरंभिक शिक्षा में परीक्षा और पास-फेल को लेकर बहुत अनिश्चितता और भ्रम का माहौल बना हुआ है। पहली बात तो यह कि देश के बच्चों को शिक्षा का अधिकार बहुत मुश्किल और बड़ी जद्दोजहद के बाद मिला है। इसके बावजूद उसे बनाया ही इस तरह गया है कि कभी सरकार के माध्यम से और कभी न्यायालयों के माध्यम से लगातार तेजहीन बनाने की लम्बी मुहिम चालू हो गई है। अधिनियम के बहुत से अच्छे प्रावधानों को सरकारों ने अनदेखा ही कर दिया है जैसे विद्यालयों में संसाधनों और शिक्षकों की योग्यता संबंधी प्रावधान। यह भारतीय समाज में आर्थिक-सामाजिक रूप से कमजोर तबके के बच्चों के प्रति उदासीनता को दुर्भाव की सीमा तक ले जाता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम स्वयं भी बहुत-सी परेशानियों का कारण बना है। जैसा कि ऊपर कहा है, अधिनियम में बहुत से जरूरी और अच्छे प्रावधान हैं। पर जहां तक शिक्षण विधि, शिक्षाक्रम और मूल्यांकन का सवाल है यह अधिनियम नासमझी और दुराग्रहों का पुलिंदा है। यह इस बात का प्रमाण है कि सरकारी स्तर पर शैक्षिक-चिन्तन बहुत सतही है और उस पर गंभीर विचार की कोई कोशिश नहीं हो रही है। अधिनियम की धाराएं 29 और 30 शिक्षा के बारे में एक दुहरी और भ्रमित समझ की तस्वीर है। आठवीं पास करने तक बोर्ड की परीक्षा नहीं करने और सतत् मूल्यांकन की बात इन्हीं धाराओं में की गई है। यदि इन दोनों धाराओं को धारा 4, 15 और 16 के साथ मिलाकर पढ़ें तो बहुत भ्रामक और पूरी विद्यालयी शिक्षा की कवायद को अर्थहीन बना देने वाली तस्वीर उभरती है। वह यह कि, 1. कोई बच्चा बिना किसी पूर्व पढ़ाई के अपनी उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश ले सकता है। अर्थात् 11 वर्ष का बच्चा बिना पूर्व पढ़ाई के सीधा छठी कक्षा में अध्ययन शुरू कर सकता है। 2. इस बच्चे को सत्र

के आखिर में सातवीं कक्षा में भेजना लाजमी होगा, चाहे यह सातवीं की पढ़ाई के लिए तैयार हो या न हो। 3. आठवीं के आखिर में इसकी आरंभिक शिक्षा पूर्ण मान ली जाएगी।

ये चीजें विद्यालयी पढ़ाई को अर्थहीन तमाशा बनाने के लिए काफी हैं और यह तमाशा बच्चों की भलाई के लिए बाल-केन्द्रित शिक्षा के नाम पर किया जा रहा है। वास्तव में सरकार के स्तर पर शिक्षा की नासमझी परीक्षा न करके सतत् मूल्यांकन करने, फेल न करने और उम्र के अनुसार कक्षा में प्रवेश देने के प्रावधानों में नहीं है। यह समस्या शिक्षा के दो भिन्न दर्शनों और सिद्धान्तों में फर्क न देख पाने की मूढ़ता में है। उपरोक्त सारे प्रावधान शिक्षा की प्रगतिवादी धारा से लिए गए हैं लेकिन आरंभिक शिक्षा का भारतीय ढांचा घोर जड़, परंपरावादी और आधिकारितावादी है। हमारा शिक्षाक्रम कक्षाओं में बंटा है, पढ़ाई कक्षा के आधार पर होती है, अध्यापक कक्षा के आधार पर तय होते हैं, और मूल्यांकन कक्षा के आधार पर होता है। उम्र के अनुसार बच्चों के साथ पढ़ना, फेल न करना, साल के आखिर में परीक्षा न लेना आदि ऐसी व्यवस्था से आते हैं जो विद्यालयों और शिक्षाक्रम को कक्षाओं में नहीं बांटती। शिक्षा के अधिकार अधिनियम को बनाने वाले इस सामान्य-सी बात को और इसमें निहित विसंगति को नहीं समझ पाए, नहीं देख पाए कि ये दोनों चीजें एक ही व्यवस्था का एक साथ हिस्सा नहीं बन सकतीं। इसे अनदेखी, उदासीनता और मूर्खता के अलावा क्या कहा जा सकता है?

तो क्या सरकार के तीसरी, पांचवीं और आठवीं में बोर्ड की परीक्षा लागू करने से यह समस्या हल हो जाएगी? असंगतता की समस्या का एक हिस्सा बिल्कुल हल हो जाएगा, लेकिन हमारी शिक्षा की जड़ परंपरावादी ढांचे से उबरने की कोशिश पूरी तरह से नाकाम हो जाएगी। अब जड़ता और असंगतता में से किसे चुनना है यह सरकार को देखना है। पर उससे बड़ी समस्याएं उठ खड़ी होंगी और बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता में रती भर भी सुधार नहीं होगा। इसलिए यह फैसला वैसा ही गैर-जिम्मेदाराना साबित होगा जैसा अभी लागू फैसला है।

इसे थोड़ा ठहरकर समझने की जरूरत है। पहली बात तो यह की असली मुद्दा बच्चों ने क्या, कितना और किस पारंगतता के साथ सीखा है, इसके ठीक-ठीक आकलन का है। परीक्षा इस आकलन का एक तरीका है, एक मात्र तरीका नहीं है। दो, पारंपरिक परीक्षा बच्चों की रटकर चाही गई शब्द-शृंखला लिखने या बोलने की जांच तो कर सकती है पर उसके पीछे के अर्थ को समझने की नहीं। यह बात बार-बार अध्ययनों से सामने आ चुकी है। तीन, बिना समझे शब्द-शृंखलाएं रटना न तो आगे और सीखने में काम आता है और न ही समस्या समाधान में। यह केवल दिमाग पर मृत शब्दों का बोझ बढ़ाता है। शिक्षा का काम सोचना सिखाना, कुछ काम करना सिखाना, निर्णय लेना सिखाना है। ऐसी रटत विद्या इनमें से कुछ भी नहीं कर सकती, तो बोर्ड की परीक्षा लागू कर देने भर से तो कुछ भी फायदा होने की संभावना नहीं है।

एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। मैंने बहुत पहले टेलीविजन पर एक प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम देखा था। उसमें एक भागीदार से पूछा गया, “कादम्बरी किसने लिखी है?” उत्तर था, “बाण भट्ट ने”। दूसरा सवाल था, “बाण भट्ट हर्षवर्धन, चन्द्रगुप्त और अकबर में से किसके दरबार में था?” उत्तर था, “अकबर”। क्या यह व्यक्ति कादम्बरी के बारे में, उसकी भाषा, विधा, कथा, साहित्यिक महत्त्व आदि कुछ भी समझता होगा? उसके दूसरे उत्तर से तो नहीं लगता। ज्ञान एकल वाक्यों में नहीं, उनकी आपसी निर्भरता को समझने और संबंधों में होता है और यह जांच आजकल ली जाने वाली परीक्षा नहीं कर सकती। वास्तव में कोई भी व्यापक स्तर पर ली जाने वाली लिखित परीक्षा नहीं कर सकती। हां, वर्तमान व्यवस्था में यह बच्चों को फेल करने, विद्यालय से भगाने, उन पर असफल का लेबल चस्पा करने और सामाजिक छंटनी का काम जरूर कर सकती है। पर यह न तो बच्चों के हित में होगा न ही समाज के।

हमें यह समझे की जरूरत है कि समस्या का हल परीक्षा लागू करने से नहीं बल्कि आकलन के बेहतर तरीके खोजने से होगा। यह काम बोर्ड की परीक्षा के बस का नहीं है। बच्चों के सीखने का सही आकलन केवल शिक्षक विद्यालय के स्तर पर ही कर सकता है। वह भी तब जब वह बच्चों को पढ़ाने में रुचि रखता हो, उनके मानस, शिक्षा के महत्त्व, सीखने के सिद्धांतों और ज्ञान के स्वरूप को समझता हो। अतः हमें बिना समझे शिक्षा को राजनैतिक पेंडुलम बनाने के बजाय शैक्षिक ढांचे, विद्यालय के संचालन, शिक्षकों की समझ और उनके काम की परिस्थितियों को सुधारने पर ध्यान देना चाहिए, बोर्ड आदि के फैसले केवल हमारी नासमझी और गैर-जिम्मेदारी के गवाह बनेंगे। ♦